14 कार्य एवं शिक्षा : सामुदायिक भागीदारी एवं विकास के सन्दर्भ में [WORK AND EDUCATION : IN CONTEXT OF COMMUNITY PARTICIPATION AND DEVELOPMENT]

कार्य एवं शिक्षा
(WORK AND EDUCATION)

"Our Education has got to be revolutioned. The brain must be educated through the hand. If I were a poet, I could write poetry on the possibilities of the five fingers. Why should you think that the mind is everything and the hands and feet nothing. Those who do not train their hands, who go through the ordinary rut of education, lack 'music' in their life. All their faculties are not trained. Mere book knowledge does not interest the child so as to hold his attention fully. The brain gets weary of mere words, and the child's mind begins to wonder. The hand does the things it ought not to do, the eye sees the things, it ought not be see the ear hears the things it ought not to hear, and they do not do, see or hear, respectively what they ought to. They are taught to make the right choice and so their education of ten proves their ruin. An education which does not teach us to discriminate between good and bad, to arrimilate the one and eschen the other is a misnomer."

Mahatma Gandhi

छात्राध्यापकों में चर्चा के समय हरिजन, 18 फरवरी, 1939

वर्तमान शिक्षा में कार्य जिसे मजदूरी या दूसरे प्रकार के शोषणयुक्त श्रम से अलग रखा गया है व इसे पूरी शिक्षा व्यवस्था में मान्यता प्राप्त की गई है। यहाँ **'कार्य'** से तात्पर्य बच्चों के जीवन में शिक्षणशास्त्रीय भूमिका से है। इस सन्दर्भ में हमें यह भी सोचना होगा कि किस प्रकार से हम 'कार्य अनुभव' से शिक्षा में अनिवार्य बनाकर, हाशिए पर खड़े बच्चों के अनन्त ज्ञान, सामाजिक सूझ व कौशल का प्रयोग शिक्षा प्रणाली में कर सकते हैं। मौजूदा आँकड़े बताते हैं कि किस प्रकार बिना रोजगार के आर्थिक विकास का दुष्प्रभाव समाज पर पड़ता है। वैश्वीकरण का प्रभाव भी उत्पादन के तरीकों पर पड़ा है अतः यदि हम अपने देश के नौनिहालों की पढ़ाई के साथ-साथ उनमें व्याप्त तकनीकी कौशलों का प्रयोग नहीं करेंगे, तो उनका यह पेशेवर ज्ञान (Professional Knowledge) बेकार हो जायेगा। इसी सन्दर्भ में गाँधीजी की **'बेसिक शिक्षा योजना'** व **'नई तालीम'** द्वारा 'कार्य व शिक्षा' (Work and Education) की संकल्पना को बल मिला है।

सन् 1937 में प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्रियों, राष्ट्रीय नेताओं और समाज-सुधारकों के 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन' में जिसे **'वर्धा शिक्षा सम्मेलन'** भी कहा जाता है, महात्मा गाँधी ने अपनी नवीन बेसिक शिक्षा की योजना को प्रस्तुत करते हुए कहा, "देश की वर्तमान शिक्षा-पद्धति किसी भी तरह देश की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकती है। इस शिक्षा द्वारा जो भी लाभ होता है, उससे देश का कर देने वाला प्रमुख वर्ग संचित रह जाता है। अतः प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम कम-से-कम सात साल का हो, जिसके द्वारा मैट्रिक तक का ज्ञान दिया जा सके, पर इसमें अंग्रेजी के स्थान पर कोई अच्छा उद्योग जोड़ दिया जाय। सर्वतोमुखी विकास के उद्देश्य से सारी शिक्षा जहाँ हो सके, किसी उद्योग के द्वारा दी जाय, जिससे पढ़ाई का खर्च भी अदा हो सके। जरूरी यह है कि सरकार उन बनाई हुई चीजों को राज्य द्वारा निश्चित की गई कीमत पर खरीद ले।"

इस प्रकार, गाँधीजी ने मैट्रिक के स्तर तक अंग्रेजी रहित उद्योग पर आधारित और मातृभाषा द्वारा सात वर्ष की स्वावलम्बी बेसिक शिक्षा की योजना प्रस्तुत की। तत्पश्चात् 'सम्मेलन' में भाग लेने वाले शिक्षा-विशारदों ने गाँधीजी की योजना पर विचार-विमर्श करके निम्नलिखित प्रस्ताव पास किए—

1. इस 'सम्मेलन' की राय में राष्ट्र के सब बच्चों को 7 वर्ष तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा दी जानी चाहिए।
2. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए।
3. सात वर्ष की सम्पूर्ण अवधि में शिक्षा का मध्य-बिन्दु किसी प्रकार का हस्तशिल्प होना चाहिए, जिससे कुछ मुनाफा हो सके।
4. बच्चों को जो भी शिक्षा-दीक्षा दी जाय, वह केन्द्रीय हस्तशिल्प से सम्बन्धित होनी चाहिए और उसका चुनाव बच्चों के वातावरण को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।
5. 'सम्मेलन' आशा करता है कि इस पद्धति से धीरे-धीरे अध्यापक के वेतन का व्यय निकल जायेगा।

ज़ाकिर हुसैन समिति
(ZAKIR HUSSAIN COMMITTEE)

उपर्युक्त प्रस्तावों को पारित करने के पश्चात् 'सम्मेलन' ने दिल्ली के 'जामिया-मिलिया' के तत्कालीन प्रिंसिपल डाक्टर ज़ाकिर हुसैन की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति की। इसी समिति को 'ज़ाकिर हुसैन **समिति**' कहा जाता है।

'समिति' को गाँधीजी द्वारा व्यक्त किए जाने वाले शिक्षा-सम्बन्धी विचारों और 'सम्मेलन' द्वारा पारित किए जाने वाले प्रस्तावों के आधार पर 'नई तालीम' की योजना तैयार करने का काम सौंपा गया। 'समिति' ने अपना पहला प्रतिवेदन, दिसम्बर, सन् 1937 में और दूसरा प्रतिवेदन, अप्रैल, सन् 1938 में प्रस्तुत किया।

प्रथम प्रतिवेदन में 'समिति' ने तत्कालीन शिक्षा-पद्धति के दोषों, वर्धा-शिक्षा-योजना के सिद्धान्तों, उद्देश्यों, अध्यापकों, शिक्षक-प्रशिक्षण; विद्यालयों के संगठन, प्रशासन, निरीक्षण एवं परीक्षा-नियमों और कताई-बुनाई को मुख्य हस्तशिल्प मान उसके पाठ्यक्रम का सविस्तार वर्णन किया।

द्वितीय प्रतिवेदन में 'समिति' ने कृषि, मिट्टी का काम, लकड़ी का काम आदि कुछ अन्य हस्तशिल्पों को पाठ्यक्रम में स्थान दिया एवं इन शिल्पों और अध्ययन के समस्त पाठ्य-विषयों का वर्णन

किया। उसने यह मत प्रकट किया कि हस्तशिल्पों का अन्य विषयों से सह-सम्बन्ध (Correlation) होना चाहिए।

'समिति' की प्रथम रिपोर्ट को फरवरी, सन् 1938 में हरिपुरा में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन के समक्ष प्रस्तुत किया गया। अधिवेशन ने 'रिपोर्ट' को स्वीकार किया। यही 'रिपोर्ट'— **'वर्धा-शिक्षा-योजना'** (Wardha Scheme of Education) के नाम से प्रसिद्ध है और **बुनियादी शिक्षा** का आधार है।

वर्धा शिक्षा योजना, बेसिक शिक्षा, बुनियादी तालीम व बुनियादी शिक्षा, इन विभिन्न नामों से पहचानी जाने वाली गाँधी जी की शिक्षा व्यवस्था, वास्तव में भारतीय सभ्यता व संस्कृति के आधार अथवा बुनियाद से जुड़ी थी। गाँधी जी को राष्ट्रपिता (Father of Nation) कहा जाता है, क्योंकि उन्होंने वास्तव में भारतीय जनता की समस्याओं तथा परिस्थितियों का गहराई से अध्ययन किया था तथा इन्हीं कारणों से उन्होंने अपनी शिक्षा व्यवस्था का मूलभूत सिद्धान्त 'हस्त उत्पादक कार्य'(Manual Productive Work) रखा जिससे शिक्षकों के वेतन व अन्य मदों पर व्यय का भी समुचित प्रबन्ध हो जाए, क्योंकि तत्कालीन आर्थिक स्थिति भी अत्यन्त दयनीय थी। उन्होनें अपनी वर्धा शिक्षा में भारतीय जनता की स्वायत्तता तथा प्रगतिशील बनाने हेतु अनेक सकारात्मक और लाभदायक सुझाव दिये। यह शिक्षा व्यवस्था मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित हैं, क्योंकि इसमें छात्रों की रूचियों, योग्यताओं व क्षमताओं को भी महत्व दिया गया है।

कार्य आधारित शिक्षा (Work Centered Education)—कोठारी आयोग (1964-66) ने अनुशंसा की कि, ''कार्यानुभव को सम्पूर्ण शिक्षा का अभिन्न अंग (Integral part) बनाया जाये और इसे विद्यालय में उत्पादक कार्य की सहभागिता के रूप में परिभाषित किया। आयोग ने शिक्षा में कार्य अनुभव व शिक्षा के व्यवसायीकरण में स्पष्ट भेद करते हुए बताया—

"Work experience is thus a method of integrating education with work. This is not only possible but essential in modern societies which adopt science based technology."

आयोग द्वारा शिक्षा का सम्बन्ध उत्पादकता में जोड़ने हेतु निम्न कार्यक्रमों का सुझाव दिया गया—

(i) विज्ञान शिक्षा को प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य किया जाए और इस शिक्षा का उपयोग उत्पादन कार्यों में किया जाए।

(ii) कार्य अनुभव (Work Experience) को सभी प्रकार की शिक्षा के एक अभिन्न अंग के रूप में प्रारम्भ किया जाए, जिसमें शिल्पविज्ञान तथा औद्योगीकरण हेतु उत्पादक प्रक्रियाओं में विज्ञान के उपयोग का हर सम्भव प्रयास किया जाए।

(iii) माध्यमिक शिक्षा को व्यवसायपरक बनाया जाए।

(iv) उच्च शिक्षा में कृषि विज्ञान व तकनीकी शिक्षा पर बल देने के साथ ही विज्ञान व तकनीकी क्षेत्र में शोध कार्यों को विकसित किया जाए।

तत्पश्चात् राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 में भी कहा गया कि—

कार्यानुभव की शिक्षा को सभी स्तरों पर दी जाने वाली शिक्षा का एक आवश्यक अंग माना जायेगा व इसे देने हेतु एक श्रेणीकृत व सुसंरचित कार्यक्रम भी बनाया जायेगा। इसके द्वारा प्राप्त किया गया अनुभव आगे चलकर रोजगार पाने में बहुत सहायक होगा। वातावरणीय सचेतनता या जागरूकता उत्पन्न करने के कार्यक्रमों को सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया में समाकलित किया जायेगा।

नई शिक्षा नीति, 1986 की समीक्षा के दौरान भी कार्य व शिक्षा से सम्बन्धित सुझाव अग्र प्रकार दिया गया—

प्रथम 10 वर्ष तक की शिक्षा को रोजगारपरक बनाया जाये। इस स्तर पर कार्यानुभव (Work Experience) अथवा समाजोपयोगी उत्पादक कार्य (SUPW, Socially Useful Productive Work) अनिवार्य किया जाये।''

"The purpose of demarcating a distinct curricular area as socially useful productive work is to emphasize the principle that Education should be Work centred."

इस प्रकार SUPW की संकल्पना जिसे ईश्वरभाई पटेल समिति द्वारा प्रस्तावित किया गया था, को बाद से राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा के समय उच्च माध्यमिक शिक्षा में व्यावसायीकरण के विशेष रूप में डाला गया और विद्यालयी दिनचर्या में इसके लिये एक चक्र निश्चित किया गया। आज वर्तमान में इसी योजना का वृहत रूप हमारे प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदीजी की **कौशल विकास उन्नयन** योजना के रूप में हमारे सामने है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 में कार्य को एक ऐसी गतिविधि बताया गया है जो कुछ पैदा करने की तरफ इशारा करती है। इसका यह भी मतलब होता है कि धन या अन्य किसी वस्तु के बदले किसी और के लिये श्रम। इस प्रकार की कई गतिविधियाँ भोजन अथवा दैनिक उपयोग की वस्तुओं के उत्पादन और लोगों के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य की देखरेख से सम्बन्धित है।

इस अर्थ में काम से तात्पर्य हुआ समाज या समुदाय के अन्य लोगों के प्रति दायित्व का निर्वाह। इसका यह भी अर्थ है कि समाज में व्यक्ति अपना और अपनी सामर्थ्य का योगदान दूसरों की आवश्यकताओं की पूर्ति अथवा अर्थोपार्जन हेतु कर रहे हैं। अतः 'कार्य' को पाठ्यचर्या का 'अहम्' हिस्सा बनाने की तैयारी होनी चाहिये, परन्तु यह कार्य बच्चों को लादा हुआ न लगे और उनके सीखने की क्षमता इससे प्रभावित न हो। अर्थात् स्कूल में कार्य की शुरुआत बच्चों के शोषण का माध्यम नहीं बनना चाहिये।

कई शिक्षणशास्त्रीय विधियों में कार्य का उपयोग शैक्षणिक उपकरण के रूप में किया जाता है। उदाहरणार्थ मॉण्टेसरी पद्धति में काम के कौशल और अवधारणाओं को काफी आरम्भ में पाठ्यचर्या में जगह दी जाती है। बच्चों की आयु व योग्यता को ध्यान में रखकर तैयार किया गया उपयोगी काम उनके सामान्य विकास में तो योगदान देता ही है, साथ ही जब उसे छात्रों के जीवन पर लागू किया जाता है, तो वह उनके लिये मूल्यों, बुनियादी वैज्ञानिक धारणाओं, कौशलों और रचनात्मक अभिव्यक्ति के कारक के रूप में काम करता है। बच्चे काम के द्वारा अपनी एक अस्मिता पाते हैं और स्वयं को उपयोगी व महत्वपूर्ण समझते हैं क्योंकि कार्य उन्हें अर्थवान बनाता है और इसके माध्यम से वे समाज का हिस्सा बनते हैं और ज्ञान के निर्माण में सक्षम हो पाते हैं। इस प्रकार कार्य एक शैक्षणिक गतिविधि बन जाती है जिससे समाज में व्यक्ति स्वयं को मूल्यवान समझता है क्योंकि काम के कुछ पाने योग्य लक्ष्य होते हैं और इससे अन्तर्निर्भरता का ताना-बाना बनता है।

इसलिये 'काम' को यदि स्कूली पाठ्यचर्या से जोड़ना हो तो अच्छी-खासी शिक्षाशास्त्रीय समझ की जरूरत होगी जिससे यह समझा जा सके कि कार्य को अधिगम (Learning) से कैसे समेकित किया जाये और इसका आंकलन व मूल्यांकन कैसे हो।

स्कूल की पाठ्यचर्या में काम के संस्थानीकरण हेतु रचनात्मक व साहसिक चिन्तन की आवश्यकता होगी जो कार्य को उपयोगी व उत्पादक सामाजिक कार्य (SUPW) की जड़ता से तोड़ेगा, जिसके प्रति हमारे शिक्षक व शिक्षार्थी संदेहयुक्त है। अतः यह पता लगाने की आवश्यकता है कि किस प्रकार हाशिए पर रहने वाले बच्चे के समृद्ध ज्ञान आधार और कौशल उनके लिये सम्मान का जरिया व दूसरे बच्चों के लिये अधिगम का स्रोत बन सकते हैं। अतः उत्पादक कार्य को पाठ्यचर्या का केन्द्रीय आधार बनाया जाये।

इसके लिये पूर्व-प्राथमिक से उच्चतर माध्यमिक स्तर की स्कूली पाठ्यचर्या का पुनर्गठन करना चाहिये ताकि काम को ज्ञान अर्जन का शिक्षाशास्त्रीय माध्यम बनाकर मूल्यों व विविध कौशलों का विकास किया जा सके और काम की समस्त शिक्षणशास्त्रीय संभावनाएँ तलाश कर इसे शिक्षा में जोड़ा जा सके। इसके लिये कार्य-आधारित सामान्य दक्षताएँ शिक्षा के हर स्तर पर दी जानी चाहिये। आलोचनात्मक सोच, अधिगम का हस्तान्तरण, रचनात्मकता, संप्रेषण के कौशल, सौन्दर्यबोध, काम के लिये प्रोत्साहन, सहयोगी क्रियान्वयन के मूल्य और सामाजिक जवाबदेही व उद्यमशीलता इसमें शामिल हैं। इसके लिये मूल्यांकन के मानक भी फिर से तय किये जाने होंगे। काम-केन्द्रित (Work-Centered) शिक्षा के प्रभावी और सार्वभौमिक कार्यक्रम के बिना यह सम्भव नहीं दिखता कि सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा व बाद की सार्वभौमिक माध्यमिक शिक्षा कभी सफल हो पायेगी।

सामुदायिक सहभागिता व सामुदायिक के विकास (COMMUNITY PARTICIPATION AND COMMUNITY DEVELOPMENT)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में निम्नांकित घटकों को विशेष महत्त्व दिया गया—

* गैर-सरकारी संस्थाओं एवं स्वैच्छिक प्रयासों के साहचर्य से जन सहभागिता को महत्त्व प्रदान करना।
* शिक्षा नियोजन व प्रबन्धन में महिलाओं को भूमिका निर्वाह का अवसर देना।
* निर्धारित लक्ष्यों एवं मानकों के अनुकूल उत्तरदायित्व का निर्धारण।

इससे स्पष्ट है कि प्राथमिक शिक्षा के प्रसार एवं गुणवत्ता में राज्य एवं समुदाय की सहभागिता आवश्यक है। प्रारम्भिक/प्राथमिक शिक्षा की सर्वमान्यता में मूल रूप से स्थानीय समुदाय का प्रभाव आवश्यक है।

सामुदायिक सहभागिता व सामुदायिक विकास के अन्तर्गत किये गये प्रयास

विद्यालय समाज की प्रमुख संस्थाएँ हैं। समाज एवं विद्यालय के कभी भी दो उद्देश्य नहीं हो सकते हैं। जब कभी ऐसा हो जाता है तो समाज विद्यालय के अस्तित्व को सहन नहीं कर पाता है और वह विद्यालय को समाप्त कर देता है। इसलिए यह आवश्यक है कि विद्यालय एवं समाज में सामंजस्य बनाये रखा जाय। यदि सामंजस्य नहीं रह पाता है तो समाज एवं विद्यालय के मध्य एक खाई बन सकती है और इसके सम्पूर्ण शैक्षणिक उद्देश्य नष्ट हो सकते हैं। यदि छात्र विद्यालय में यह नहीं सीख पाता है कि आगे भविष्य में उसे अपना व्यावहारिक जीवन किस प्रकार व्यतीत करना है; यदि वह यह नहीं सीख पाता है कि समाज के साथ समायोजन किस प्रकार किया जाय तो समाज के भावी नागरिक का सामाजिक जीवन सुखद नहीं हो सकता है। फलतः आवश्यकता इस बात की है कि छात्रों को सुखद सामुदायिक जीवन व्यतीत करने का प्रशिक्षण विद्यालय प्रांगण में ही प्रदान कर दिया जाय। इस प्रकार के प्रशिक्षण हेतु हमें विद्यालय के वातावरण का पूर्णरूपेण समाजीकरण करना होगा। विद्यालय को एक लघु समाज का रूप प्रदान करना पड़ेगा। छात्र विद्यालय में आकर सोचें कि वे समाज से बाहर एक कृत्रिम स्थान पर आ गये हैं। हमें विद्यालय को समाज का ही रूप बना देना पड़ेगा। इसके लिए हम अग्रांकित दो प्रकार के उपाय प्रयोग में ला सकते हैं—

1. समुदाय को छात्रों के पास लाकर तथा
2. छात्रों को समुदाय के पास ले जाकर।

समुदाय को छात्रों के पास लाकर

विद्यालय को लघु समाज का रूप प्रदान करने का प्रमुख उद्देश्य है छात्रों को समाज की परिस्थितियों से अवगत कराना, जिससे वे अपने भविष्यत् जीवन में समाज के साथ स्वस्थ समायोजन कर सकें। समाज को परिस्थितियों से छात्रों को अवगत कराने के लिए दो साधन हैं—या तो समाज को छात्रों के पास लायें या छात्र समाज के पास जायें। यहाँ पर हम उन साधनों का अध्ययन करेंगे जिनके द्वारा समाज छात्रों के पास लाया जाता है। ऐसे साधन निम्नलिखित हैं—

(1) **किसी अनुभवी व्यक्ति का भाषण कराके**—समुदाय को छात्रों के निकट लाने का सबसे प्रमुख साधन है, समुदाय के किसी अनुभवी व्यक्ति को आमन्त्रित करके उसके भाषण कराना। इस प्रकार के व्यक्तियों द्वारा समुदाय के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला जाता है। इससे छात्र पर्याप्त मात्रा में लाभान्वित होते हैं। अध्यापक, व्यवसायी, विदेशी, सरकारी नौकर, भ्रमणकारी, भूतपूर्व छात्र, अभिभावक तथा स्थानीय क्षेत्र के प्रमुख व्यक्ति जैसे सरपंच, पंच, प्रधान, कृषि-पण्डित आदि इस कार्य के लिए सर्वोत्तम साधन माने जाते हैं। इस प्रकार के भाषणकर्त्ता छात्रों को अनेक प्रकार की सहायता प्रदान कर सकते हैं।

(2) **अभिभावक-शिक्षक संघ**—अभिभावक-शिक्षक संघ द्वारा विद्यालय के वातावरण को सामुदायिक बनाने में काफी सहायता मिलेगी। अभिभावकों को विद्यालय के क्रियाकलापों में सक्रिय भाग लेना अत्यन्त लाभदायक होता है। अभिभावक अपने बच्चों के सर्वाधिक कल्याणार्थ विद्यालय की उन्नति हेतु अनेक योजनाएँ बना सकते हैं।

इस प्रकार के संघों के माध्यम से शिक्षक, माता-पिता तथा शिक्षार्थी एक-दूसरे के निकट आते हैं और वे विद्यालय-वातावरण को पूर्णरूपेण सामाजिक बनाते हैं।

(3) **मेले, पर्व एवं राष्ट्रीय दिवसों का आयोजन**—विद्यालय-प्रांगण में अनेक अवसरों पर मेलों, पर्वों तथा राष्ट्रीय दिवसों का आयोजन करके भी हम अपने छात्रों को सामाजिक अध्ययन विषय का पर्याप्त मात्रा में ज्ञान प्रदान कर सकते हैं। विद्यालय में अनेक प्रकार के मेले लगाए जा सकते हैं। वे मेले किसी धर्म-विशेष से सम्बन्धित हो सकते हैं या किसी घटना-विशेष से। इन मेलों में समाज के विभिन्न व्यक्ति आते हैं। छात्र इन व्यक्तियों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का परिचय पाकर अपने में ज्ञान की वृद्धि करते हैं।

(4) **समाज-क्रिया सेवाएँ**—विद्यालय में अनेक समाज-सेवा क्रियाओं का आयोजन करके भी हम छात्रों को सामाजिक अध्ययन विषय का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान कर सकते हैं।

(5) **राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर गोष्ठियाँ**—विद्यालय में विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार-विमर्श किया जा सकता है, वाद-विवाद किया जा सकता है या फिर किसी गोष्ठी का आयोजन किया जा सकता है। इस प्रकार के विचार-विमर्श, वाद-विवाद या गोष्ठी में केवल छात्र एवं अध्यापक ही भाग लें, ऐसा नियम नहीं होना चाहिए। इस प्रकार के आयोजनों में अभिभावक तथा स्थानीय व्यक्तियों को भी आमन्त्रित किया जाना चाहिए।

छात्रों को समुदाय के पास ले जाकर

जिस प्रकार हम समुदाय को छात्र के निकट लाते हैं, ठीक उसी प्रकार हम छात्रों को समुदाय के निकट ले जाते हैं। इस प्रकार समुदाय के लाने और छात्रों के ले जाने का उद्देश्य एक ही होता है—छात्रों

को समुदाय से अवगत कराना। छात्रों को समुदाय तक ले जाने हेतु सामान्यतः निम्नांकित रीतियों का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है–

क्षेत्र-पर्यटन (Educational Tours)—सामुदायिक साधनों द्वारा सामाजिक अध्ययन विषय का शिक्षण प्रदान करने हेतु प्रयोग किया जाता है। इन सभी साधनों में क्षेत्र-पर्यटन अत्यधिक लाभप्रद एवं महत्त्वपूर्ण है। क्षेत्र-पर्यटन कक्षा-कक्ष के बाहर भ्रमण करने का वह व्यवस्थित रूप है जिसको संचालन विद्यालय द्वारा शिक्षाक्रम का एक आवश्यक अंग मानकर किया जाता है। विद्यालय की चहारदीवारी का भ्रमण, पास में बहने वाली नदी का अवलोकन या देश की राजधानी या चार-सौ किलोमीटर दूर अवस्थित किसी ऐतिहासिक भवन या आधुनिक उद्योग का अवलोकन सभी क्षेत्र-पर्यटन के अन्तर्गत आते हैं।

क्षेत्र-पर्यटन के प्रकार

(i) लघु क्षेत्र-पर्यटन
(ii) सामान्य क्षेत्र-पर्यटन
(iii) दीर्घ क्षेत्र-पर्यटन

क्षेत्र-पर्यटन के उद्देश्य

क्षेत्र-पर्यटन के निम्नांकित उद्देश्य हो सकते हैं–

(1) नवीन सूचनाएँ प्राप्त करना।
(2) अभिवृत्तियों को परिवर्तित करना।
(3) रुचि जाग्रत करना।
(4) आदर्शों का निर्माण करना।
(5) नवीन अनुभवों की उपलब्धि।
(6) मानसिक नीरसता को समाप्त करना।
(7) समाज या समुदाय का व्यावहारिक ज्ञान देना।

क्षेत्र-पर्यटन की सफलता क्षेत्र-पर्यटन के कुशल संचालन पर निर्भर करती है। अतः क्षेत्र-पर्यटनों का संचालन करते समय शिक्षा को बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। उसे क्षेत्र-पर्यटन से सम्बन्धित एक पूर्व-योजना बना लेनी चाहिए। इस योजना के अन्तर्गत उसे तीन बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

1. क्षेत्र-पर्यटन के आरम्भ होने के कार्य।
2. क्षेत्र-पर्यटन के समय के कार्य।
3. क्षेत्र-पर्यटन के पश्चात् के कार्य।

क्षेत्र-पर्यटन के लाभ

क्षेत्र-पर्यटन से निम्नांकित लाभों की प्राप्ति सम्भव है–

(i) क्षेत्र-पर्यटन छात्रों को व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करते हैं। क्षेत्र-पर्यटनों के द्वारा छात्र समाज को उसके वास्तविक रूप में देखते हैं। वे बैंकों में विभिन्न व्यक्तियों को कार्य करते हुए देखते हैं। बैंक की कार्य-प्रणाली का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार से प्राप्त ज्ञान पुस्तकीय एवं सैद्धान्तिक ज्ञान से कहीं अधिक व्यावहारिक होता है।

(ii) क्षेत्र-पर्यटन जीवन की अनेक वास्तविकताओं से अवगत कराते हैं। दूसरों के साथ किस प्रकार का जीवन व्यतीत करना चाहिए, रेल-यात्रा में क्या-क्या कठिनाइयाँ होती हैं, अन्य व्यक्तियों से

किस प्रकार सम्पर्क स्थापित करने चाहिए, आदि का वास्तविक ज्ञान छात्रों को पर्यटनों से ही प्राप्त होता है।

समुदाय सेवा प्रोजेक्ट्स (Social Service Projects)

समाज एवं समुदाय का अध्ययन करने का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण साधन है—समुदाय सेवा प्रोजेक्ट। छात्र इस प्रकार के समुदाय सेवा प्रोजेक्ट का आयोजन करके किसी समुदाय-विशेष के सम्बन्ध में ठोस ज्ञान प्राप्त करते हैं। समुदाय का ज्ञान प्राप्त करने का यह सबसे अच्छा साधन समझा जाता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत छात्र करके सीखते हैं। वे अपने किसी प्रोजेक्ट के अनुसार समुदाय की सेवा करते हैं और सेवा करते समय अनेक अनुभव प्राप्त करते हैं। फिर इस प्रकार के अनुभव उन्हें इन्द्रियों द्वारा अर्जित होने के कारण और भी अधिक स्थायी होते हैं। इस प्रकार के प्रोजेक्ट में छात्र शारीरिक, मानसिक और संवेग से सम्बन्धित तीनों ही रूपों में व्यस्त रहते हैं। इस प्रकार अनुभवों में और भी अधिक स्थायित्व आता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि समुदाय-सेवा प्रोजेक्ट का शैक्षिक महत्त्व बहुत अधिक है।

विद्यालय के बाहर इन प्रोजेक्ट्स का स्थान और भी अधिक व्यापक है। समुदाय के अन्तर्गत हम इस प्रकार के अनेक प्रोजेक्ट ले सकते हैं। इनके उदाहरण नीचे दिए हैं—

(1) गाँव या शहर की नालियों व लड़कों की सफाई।
(2) मलेरिया, उन्मूलन आन्दोलन।
(3) बच्चों को स्नान कराना।
(4) मरीजों की देख-रेख करना।
(5) कुँओं में दवा डालना।
(6) व्यक्तियों में दवा बाँटना।
(7) खाद के गड्ढे खोदना।
(8) वृक्षारोपण करना।
(9) पीने के पानी की व्यवस्था करना।
(10) सार्वजनिक स्थानों की सफाई करना आदि, आदि।

पड़ोसी विद्यालय (Neighbourhood School)—शिक्षा-आयोग 1964, जिसे हम कोठारी-आयोग (1964-66) के नाम से भी पुकारते हैं, ने सबसे पहले पड़ोसी विद्यालयों की स्थापना का विचार राष्ट्र के सम्मुख रखा। शिक्षा आयोग विद्यालयों का एक ऐसा समूह बनाना चाहता था जिसके सभी सदस्य-विद्यालय पारस्परिक सहायता एवं सहयोग के लिए एक सहकारी संगठन (Co-operative Organisation for Mutual Assistance) बनायें। इसे शाला संगम (School Complex) के नाम से भी पुकार सकते हैं। शाला-संगम या पड़ौसी-विद्यालय व्यवस्था के अन्तर्गत एक स्थान-विशेष (Localty) के सभी उच्च एवं निम्न प्राथमिक विद्यालय पारस्परिक सहयोग के लिए सहकारिता के सिद्धान्तों पर आधारित होते हैं। इस व्यवस्था का विस्तार बाद में प्राथमिक विद्यालयों को ऊपर उठाकर अन्य स्तरों के विद्यालय तक भी किया जायेगा।

आयोग के अनुसार एक क्षेत्र में स्थित सभी विद्यालयों को सहकारिता एवं पारस्परिक सहायता के सूत्र में बाँधकर उनका एक ऐसा समूह बना दिया जाय, जिस समूह के सभी विद्यालय एक-दूसरे विद्यालय की सहायता करें, एक-दूसरे से सहायता लें तथा उस क्षेत्र-विशेष के सभी छात्रों की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति करें। आयोग के अनुसार, शाला-संगम या पड़ौसी विद्यालय-योजना के क्रियान्वयन से अग्रांकित लाभ होंगे—

1. पड़ोसी-विद्यालय स्थानीय समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में अपेक्षाकृत अधिक सफल होंगे।
2. इस योजना से एक क्षेत्र के विद्यालयों से विभिन्न प्रकार की विषमताएँ (Disparities) दूर होंगी।
3. इससे सभी विद्यालयों की आधारभूत आवश्यकताओं की सरलता से पूर्ति हो सकेगी।
4. अब तक यह प्रथा कि कुछ गिने-चुने विद्यालयों पर ही सरकारी अनुदान अधिक मात्रा में व्यय होता था, समाप्त होगी। अब वही अनुदान समान आनुपातिक रूप से क्षेत्र के सभी विद्यालयों को उपलब्ध होगा, इससे उस क्षेत्र के विद्यालयों को समान रूप से अपना विकास करने के अवसर प्राप्त हो सकेंगे।
5. एक क्षेत्र के किसी भी बालक को अपनी शैक्षिक आवश्यकताओं के लिए अन्यत्र नहीं जाना पड़ेगा।
6. पड़ोसी विद्यालय योजना से विभिन्न शिक्षा स्तर के विद्यालयों में अलगाव की भावना समाप्त होगी।
7. एक विद्यालय दूसरे विद्यालय को सहयोग करेगा, इससे शिक्षा के स्तर में गिरावट नहीं आएगी।
8. अध्यापकों में व्यवसाय के प्रति प्रतिष्ठा के भाव जाग्रत होंगे।
9. शैक्षिक मार्गदर्शन की सुविधाएँ सभी को उपलब्ध होंगी।
10. विद्यालयों में प्रजातान्त्रिक भावना जाग्रत होगी, क्योंकि शाला-संगम व्यवस्था पूरी तरह प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों पर आधारित होंगी।
11. रचनात्मक कार्यों में प्रशासनिक भय तथा लालफीताशाही नहीं रहेगी।
12. अध्यापकों में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा जाग्रत होगी, जिससे वे अधिक लगन तथा मेहनत से कार्य करेंगे।
13. सभी विद्यालय पारस्परिक सहयोग के आधार पर एक-दूसरे की सहायता करेंगे, जिससे उन्हें अपने विकास से अधिक अच्छे अवसर मिलेंगे।